संत कबीरदास : दार्शनिक सिद्धांत और शिक्षा

डॉ. मो. मजीद मियाँ,
पोस्ट डोक्टोरल शोधार्थी
मनिपुर इंटरनेशनल युनिवर्सिटी
khan.mazid1340@gmail.com
Mobile-9851722459

सारांश

मध्यकालीन कवियों में समाज को सबसे ज्यादा वैचारिक रूप से उद्वेलित, आन्दोलित और प्रभावित करने में कवि सम्राट कबीरदास जी का योगदान नि:सन्देह रूप से अविस्मरणीय है । उन्होनें अपने वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत विचारों से न केवल भारतीय जनमानस को प्रभावित किया बल्कि मन की गहराइयों में जाकर उनके विचारों को परिवर्तित करने में एक अभिनवमनोमूलक दृष्टि भी प्रदान की है । कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं विषमताओं से ग्रस्त था । जातिवाद, छुआछूत, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार व पाखण्डवाद का बोल बाला था और हिन्दु व मुसलमान धार्मिक विद्वेष के कारण आपस में झगड़ते रहते थे । दोनों धर्मो के ठेकेदार स्वार्थ की रोटिया धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर सेक रहे थे । धार्मिक कट्टरता एवं संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था । ऐसे समय में किसी ऐसे समाज सुधारक की आवश्यकता थी, जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके और दोनों धर्मों के अनुयायिओं को बिना किसी भेदभाव के सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे । कबीर इसी आवश्यकता की प्रतिपूर्ति करते हुए दिखायी पड़ते हैं ।

बीज–शब्द : व्यक्तित्व, समाज, बुराइयाँ, सुधार, संघर्ष, प्रासंगिकता ।

प्रस्तावना

संत कबीरदास को दार्शनिक कहना या उनके मतों में दार्शनिक सिद्धांत निर्मित करना बड़ा ही जोखिम और जटिल कार्य है । संत कबीरदास मूलतः भक्त थे । 'सत्' के स्वरूप का उन्होंने जो रहस्योद्घाटन और विश्लेषण किया है, वह अपने आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूत सत्य के आधार पर ही केन्द्रित है । इसके विपरीत दार्शनिक होने के लिए संत या भक्त होना कोई अनिवार्य नहीं है । दार्शनिक किसी भी वस्तु के तात्विक स्वरूप का निर्णय बुद्धि से करता है । उसके विचारों में तर्क और बुद्धि के द्वारा सन्तुलन बना रहता है । दार्शनिक के रूप में संत कबीर के मूल्यांकन में दूसरी समस्या यह आती है कि उनमें किसी एक मत, धर्म का आग्रह नही है बल्कि कई मतों, धर्मों का सन्तुलन है । भक्त के रूप में उन्होंने जहाँ वर्ण्य–वस्तु का चुनाव किया है, अर्थात् उसकी आत्मा भक्त के अनुकूल है, वहीं अभिव्यक्ति दार्शनिक के समान बुद्धि, तर्क और विश्लेषण से युक्त उनके तर्क ऐसे अकाट्य होते हैं कि बड़े से बड़ा पण्डित भी निरुत्तर हो जाता है । संभवतः उनके इसी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संत कबीर को 'ज्ञानमार्गी' कहना स्वीकार किया था । इस दृष्टि से देखना चाहें तो संत कबीर का एक व्यक्तित्व दार्शनिक का हो सकता है ।

संत कबीरदास जी का दार्शनिक विचार अनेक दर्शनों का समन्वय है, और उसके बारे में निर्णयात्मक रूप से कुछ कहना आसान नहीं है । इसी बात का संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा था, जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के

संस्कार प्राप्त किये । वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये । इसी से उनके तथा निर्गुणवाद वाले और दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है, कहीं योगियों के नाड़ीचक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदावाद की और कहीं अहिंसावाद की । अतः तात्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी ।"[1] वस्तुतः इस मुद्दे पर आलोचकों में मतैक्य नहीं है और प्रदत्त तथ्य अपर्याप्त हैं ।

अकबर कालीन प्रसिद्ध इतिहासकार मोहसिन फानी ने अपने प्रसिद्ध इतिहास–ग्रन्थ 'दबिस्तान' में कबीर को 'मुबाहिद' (एकेश्वरवादी) कहा है । उनके लिए इसी शब्द का प्रयोग 'आइने–ए–अकबरी' में भी किया गया है, रेवरेंड जी एच वेस्टकॉट ने इस शब्द पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि– "कोई मुसलमान कभी भी किसी मूर्तिपूजक को 'मुबाहिद' नहीं कह सकता । इससे यह प्रमाणित होता है कि कबीर ईश्वरवादी थे, सर्वेश्वरवादी नहीं ।"[2] बाबू श्याम सुन्दर दास ने संत कबीरदास को ब्रह्मवादी या अद्वैतवादी माना है । उनका कथन है– यह शंकर का अद्वैत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परन्तु बीच में अज्ञान के आ जाने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है । यही बात हम संत कबीर में भी देख चुके हैं । डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत कबीर को अद्वैत विचारधारा मानने वाले संतों में प्रमुख स्थान प्रदान किया है । डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार– "अद्वैतवाद और सूफीमत में ईश्वर की जो भावना है, वही उन्होंने अपने दर्शन में रखी है । उनका ईश्वर सर्वोपरि है, वह नासूत होकर भी लाहूत है– संसार के कण–कण में विद्यमान होते हुए भी संसार से परे है ।"[3]

इन सबसे हटकर पं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक नवीन स्थापना करते हुए संत कबीर के निर्गुन राम को नाथपंथी योगियों के द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभाव – विनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेमपारावार भगवान को संत कबीरदास ने निर्गुण राम कहकर सम्बोधित किया है । रेवरेंड अहमद शाह ने बीजक के आधार पर संत कबीर के उपदेशों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि "संत कबीर के उपदेश न तो वेदान्त पर आधृत हैं न सांख्य पर, न वे न्याय के अनुगामी हैं, न मीमांसा के, उनके विचार उनके मौलिक चिन्तन पर आधृत हैं ।"[4] वस्तुतः शाह साहब, संत कबीर के सिद्धांतों से किसी विचार से पूर्णतः साम्य न बैठा सके, क्योंकि संत कबीर ने इन विचारों की कोरी नकल नहीं की थी बल्कि उन्होंने कई तत्त्वों को मिलाकर एक नवीन जीवन दर्शन का रसायन तैयार किया था, जो पूर्णतः मौलिक था । इसी से मिलता–जुलता विचार श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का भी है । उन्होंने संत कबीर को वैष्णव भक्ति से प्रभावित मानते हुए 'स्वाधीन चिन्ता का पुरुष' कहा है । ठीक इसी तरह का विचार व्यक्त करते हुए श्री परशुराम चतुर्वेदी ने संत कबीर की पंक्तियों को उद्धृत करके यह प्रमाणित करना चाहा है कि संत कबीर के मत में जो तत्व प्रकाशित हुआ था, वह उनके स्वाधीन चिन्तन का ही परिणाम था । इस तत्व के स्वरूप के सम्बंध में आप कहते हैं– "वह परमतत्व निर्गुण एवं सगुण इन दोनों से परे की वस्तु है और वह अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है ।"[5] वस्तुतः हरिऔध जी और परशुराम चतुर्वेदी जी ने संत कबीर के सिद्धांतों में एक नवीन तत्व देखा था, जो युग विशेष की परिस्थितियों की चिन्ता से उपजा था ।

उपर्युक्त विचारकों के विश्लेषणों को देखने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक विचारक ने अपने– अपने ढँग से संत कबीर के दार्शनिक सिद्धांतों को स्थिर करना चाहा है । जैसे मोहसिन फानी के विचारों के केन्द्र में इस्लाम की धर्मभावना है, बाबू श्यामसुन्दर दास के मत के पीछे शंकराचार्य का अद्वैतवाद व संत कबीर का दर्शन एक ही धारा की अगली कड़ी मानने का पूर्वाग्रह रहा । डॉ. बड़थ्वाल का पूर्वाग्रह यह था कि उन्होंने पूरी निर्गुण संत–परम्परा में व्याप्त विचारों को वेदान्त के पुराने मतों के अन्तर्गत व्यवस्थित करना चाहा है । वहीं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, नाथपंथी योगियों के सिद्धांतों को पृष्ठभूमि में रखकर संत कबीर के दार्शनिक सिद्धांत निश्चित कर रहे थे । विभिन्न विचारकों और अध्येताओं की नजर से संत कबीरदास जी के दार्शनिक सिद्धांतों को परखने के बाद यह देखना ज्यादा उचित होगा कि संत कबीर ने विभिन्न दार्शनिक तत्वों पर किस तरह के विचार व्यक्त किए हैं ।

संत कबीरदास जी ने जिस परमतत्त्व (ईश्वर) को निर्गुणराम कहा है वह अज्ञेय है । उसकी गति लक्षित नहीं की जा सकती। चारों वेद, स्मृतियाँ, पुराण, व्याकरण आदि कोई भी उसका मर्म नहीं जानते । वह निरंजन (माया) रहित है । न वह जन्म लेता है, न विनष्ट होता है ।"[6] न उसकी कोई रूपरेखा, न उसका कोई वर्ण है । उस निर्भय, निराकार, अलख निरंजन को कोई ठीक से नहीं जानता । वह 'वर्ण–अवर्ण' से मुक्त, 'आदि मध्य, अंत रहित', 'सृष्टि और लय से परे' एवं अकथ्य है । संत कबीरदास इस 'नेति –नेति' शैली को बहुत दूर तक ले गए हैं । वह बार–बार उस परमतत्व ईश्वर को सभी प्रकार के स्थूल तत्वों से अलग करना चाहते हैं । वे इसी भावावेश में कहते हैं कि राम–नाम की चर्चा तो बहुत हुई है पर उसका मर्म कोई नहीं जानता । वस्तुतः वह वेदों की सीमा से परे हैं । सभी प्रकार के भेदों से अलग हैं । वह पाप और पुण्य, ज्ञान और ध्यान, स्थूल और शून्य सभी से परे हैं ।"[7] यहाँ हम स्पष्ट देख रहे हैं कि भाषा संत कबीर के सामने लाचार नहीं है बल्कि भाषा संत कबीर का साथ नहीं दे रही है । सामान्यजन (पण्डितजन की ओर भी इशारा है) जिस भाषा से परिचित हैं वह भेदमूलक है क्योंकि इस भाषा में रूप है, अरूप है; वर्ण है, अवर्ण है; लोक है, वेद है; निर्गुण है, सगुण है; जन्म है, मरण है; आदि है, अंत है; पाप है, पुण्य है; परमतत्त्व इन सभी विषमताबोधक स्थितियों से परे है । इसलिए संत कबीर बार–बार कहते हैं वह जैसा है उसे ठीक वैसा ही समझना और समझाना दोनो ही असम्भव है । पहली कठिनाई तो स्वरूप के वास्तविक बोध की है, क्योंकि–

"जस तूं तस तोहि कोइ न जान,
लोग कहैं सब आनहिं आन ।"[8]

संत कबीरदास जी का यह निर्गुणराम (परमतत्व) सर्व–निरपेक्ष होते हुए भी एक है । "वे बार–बार कहते हैं कि मैंने तो उस एक तत्व को एक ही करके समझा है । वे बलपूर्वक कहते हैं कि हिन्दुओं और तुर्कों का कर्त्ता एक ही है । राम और रहीम, केशव और करीम विसमिल और विश्वंभर में भेद नहीं करना चाहिए ।"[9] अपना मत स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं कि मेरा सारा भ्रम दूर हो गया है और मेरा मन एक निरंजन में लग गया है । मेरा अल्लाह एक और निरंजन है । वह सबमें और सब उसमें विद्यमान हैं । उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है । जो परमात्मा सारी सृष्टि में समाया हुआ है, जो अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वही हमारे हृदय में भी विद्यमान है । उसे प्राप्त करने के लिए इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं । इसलिए संत कबीर मन को समझाते हुए कहते हैं कि रे मन! कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है, वह अविनाशी तो हृदय–सरोवर में ही विद्यमान है । उसे दुनिया में ढूँढ़ना तो भ्रम में पड़ना है । हरि तो हृदय में ही है ।

परमतत्त्व को बार–बार निर्गुण, निरंजन, निराकार कहते हुए भी संत कबीर उसमें उन गुणों की स्थिति मानते हैं जो सामान्यतः सभी भक्त अपने आराध्य में स्वीकार करते हैं । संत कबीरदास जी यह भी स्वीकार करते हैं कि आकार–रहित और अव्यक्त होते हुए भी परमात्मा संसार की सारी संवेदनाएँ ग्रहण करने में समर्थ है । परमतत्त्व ईश्वर(निर्गुण ब्रह्म) के संबंध में उपर्युक्त मान्यताएँ उनके निजी चिन्तन और अनुभूति का परिणाम भी हैं और उनके युग व पूर्व– परम्परा की आध्यात्मिक चेतना से प्रेरित भी ।

शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन के अनुसार "शरीर तथा इन्द्रिय समूह के अध्यक्ष और कर्मफल के भोक्ता आत्मा को ही जीव कहते हैं ।"[10] दूसरे शब्दों में कहा गया है कि "पर ब्रह्म ही उपाधि सम्पर्क से जीव भाव में विद्यमान रहता है । अर्थात् परब्रह्म, आत्मा और जीव में तात्विक भेद नहीं है । आत्मा और ब्रह्म तो एक ही है । जब आत्मा उपाधि – सम्पर्क के कारण अन्तःकरणावच्छिन्न होकर कर्म–फल का भोक्ता हो जाता है तो वह जीव कहलाता है और जब वह उपाधि सम्पर्क रहित शुद्ध चैतन्य की स्थिति में होता है तब वह ब्रह्म कहलाता है । संत कबीरदास जी के जीव तत्व सम्बंधी विचार उपर्युक्त विचार से काफी मिलते–जुलते हैं । वे कहते हैं कि रात्रि के समय स्वप्नावस्था में पारस (पारस रूप शुद्ध चैतन्य = ब्रह्म) और जीव में भेद रहता है।

जब तक मैं सोता रहता हूँ तब तक द्वैतभाव बना रहता है, जब जागता हूँ तो अभेद हो जाता है ।"[11] रात्रि अज्ञान–दशा का सूचक है और जागरण ज्ञान–दशा का । ज्ञान–दशा में जीव और ब्रह्म की पूर्ण एकता संत कबीर को मान्य है । संत कबीरदास ने जीव के शुद्ध चेतन रूप की ओर संकेत करते हुए एक स्थान पर उसे राम का अंश भी कहा है । जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता स्वीकार करते हुए भी संत कबीरदास यह मानते हैं कि जीव अपने शुद्ध चेतन रूप को भूलकर विषयों में अनुरक्त है । ऐसे जीव को वे हद का जीव कहते हैं । ऐसे जीव से वे मुख भर बोलना भी नहीं चाहते, किन्तु जो बेहद के जीव हैं जो असीम तत्व में अनुरक्त हैं, उनसे वे अपने हृदय की बात प्रकट करने में संकोच नहीं करते ।

अद्वैत वेदान्त की एक अद्भुत माया है । यह न सत् है न असत् । सत् इसलिए नहीं है कि ब्रह्म का ज्ञान होने पर इसका ज्ञान बाधित हो जाता है किन्तु यह असत् भी नहीं है क्योंकि असत् वस्तु की प्रतीति नहीं होती जबकि माया की प्रतीति होती है । शंकराचार्य के अनुसार माया भगवान की अव्यक्त शक्ति है, जिसके आदि का पता नहीं चलता । यह गुण त्रय (सत, रज, तम) से युक्त अविधा रूपिणी है । संत कबीरदास ने माया के सम्बंध में विचार करते हुए उपर्युक्त विचारों के निकट का ही मत दिया है । संत कबीरदास जी के माया संबंधी विचारों का सम्यक् परीक्षण करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें माया के स्वरूप का पूरा ज्ञान था । वे अच्छी तरह जानते हैं कि माया त्रिगुणात्मिका है । वे यह भी जानते हैं कि माया भगवान की ही शक्ति है जो सारे संसार के जीवों को अपना बनाने के लिए निकल पड़ी है । वे संतों को समझाते हुए कहते हैं कि यह सब आवागमन का चक्र माया ही है अर्थात् जो कुछ उत्पन्न और विनष्ट होता है, वह सब माया से प्रभावित है ।"[12] एक जगह संत कबीर ने संसार के प्रति आसक्ति उत्पन्न करने वाले सारे बन्धनों को माया बताया है । वह कहते हैं कि आदर, मान, सांसारिक विषयों के प्रति होने वाली आसक्ति, जप, तप, योग, माता, पिता, स्त्री, पुत्र यह सब कुछ माया ही है । यह माया जल, थल, आकाश और हमारे आस–पास चारों ओर व्याप्त है । सभी लोग माया के बंधन में पड़े हैं । माया के कारण ही लोग अपने प्राण दे देते हैं । ऐसी माया को त्यागने का बार–बार प्रयत्न करता हूँ किन्तु यह छोड़ी नहीं जाती । जहाँ ब्रह्म ज्ञान है वहाँ माया का स्थान नहीं है ।" संत कबीर ने अनेक जगह माया की भर्त्सना की है । उसकी उपमा कहीं वह वेश्या से देते हैं, कहीं उसे पापणी, मोहणी, दारुणी और विश्वासघातिनी कहा है उसे रामभक्ति में सबसे बड़ी बाधा भी माना है लेकिन महात्मा कबीर को यह भी विश्वास है कि जब परमात्मा का स्मरण करने वाले संत इसे भोगकर इसकी उपेक्षा कर देते हैं तब यह उनकी दासी बन जाती है ।"[13]

संसार की सृष्टि के संबंध में संत कबीरदास के विचारों पर सांख्य, अद्वैतवेदान्त तथा शैव, तंत्र एवं योग दर्शनों का संस्कारगत प्रभाव लक्षित होता है । कहीं–कहीं उन्होंने इस सन्दर्भ में अल्लाह द्वारा एक नूर से सारे संसार की सृष्टि होने की बात कहकर इस्लाम की मान्यताओं से परिचित होने का संकेत भी दिया है । इस सम्बंध में संत कबीरदास पर सांख्य का प्रभाव भी लक्षित किया गया है । इसी प्रभाव की चर्चा करते हुए डॉ. बड़थ्वाल ने कहा है,"अतएव शंकराचार्य के अनुयायियों की भांति कबीर आदि निर्गुणियों ने भी सांख्य सिद्धान्त का उपयोग किया, परन्तु उस पर अद्वैत की छाप लगा कर प्रकृति और पुरुष को भी उन्होंने व्यावहारिक सत्य के रूप में ग्रहण किया और उनके संयुक्त रूप को ब्रह्म का व्यावहारिक व्यक्त स्वरूप माना जिसके परे अव्यक्त पूर्ण ब्रह्म का स्थान था ।"[14] यहाँ यह देखना दिलचस्प है कि सांख्य दर्शन में उल्लिखित तत्त्वों (तीन गुणों और पाँच तत्त्वों) से संसार के रचे जाने की बात कहकर भी संत कबीर ब्रह्माण्ड और पिण्ड को नश्वर मानते हैं, जबकि इसके विपरीत सांख्य इनका नाश नहीं मानता । संत कबीर ने कहा है कि ब्रह्माण्ड भी नहीं है, पिण्ड भी नहीं है और पंचतत्त्व भी नहीं है ।"[15] यह तन, यह मन और सत, रज, तम ये तीनों गुण भी मिथ्या हैं । यहाँ हम यह साफ देख सकते हैं कि सांख्य दर्शन की शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी संत कबीर ने सृष्टि के सम्बंध में सांख्य का विचार स्वीकार नहीं किया है । इसी तरह तत्कालीन समय में प्रचलित शक्ति, तन्त्र और योग– इन तीनों शब्दों में स्वीकृत नाद और बिन्दु की चर्चा भी संत कबीर ने की है । इन्हीं मतों से प्रभावित होकर एक जगह उन्होंने

कहा है कि नाद और बिन्दु से रचित यह शरीर नौका रूप है और राम का नाम ही इसे भवसागर से तारने के लिए कर्णधार है । एक जगह उन्होंने यह भी लिखा है कि मेरा खसम वही है, जो नाद–बिन्दु से परे हैं । तंत्र सम्प्रदाय के ग्रन्थों में नाद और बिन्दु पर विस्तारपूर्वक चर्चा है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों शिव–शक्ति तत्व के ही व्यक्त रूप हैं । मानव पिण्ड में शक्ति कुण्डलिनी रूप में सुप्त रहती है । ब्रह्माण्ड में इसे महाकुण्डलिनी के रूप में सुप्त माना जाता है । योगी जब साधना करता है तो उसकी कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्वमुखी होकर शिव तत्व से मिलने के लिए आगे बढ़ती है । कुण्डलिनी के उबुद्ध होकर शिवोन्मुख होने से जो स्फोट होता है, उसे नाद कहते है ।"[16] तंत्रशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ शारदा तिलक में वर्णित है कि प्रकृति सम्पृक्त सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर शक्ति उत्पन्न हुई । शक्ति से नाद और नाद से बिन्दु उत्पन्न हुआ । यह बिन्दु तत्त्व अपनी इच्छा से तीन रूपों– बिन्दु, नाद और बीज– में विभक्त हो गया । बिन्दु शिवात्मक है, बीज शक्तिरूप है और नाद इन दोनों के समवाय सम्बंध से उत्पन्न है । 'सर जान वुकराफ ने षट्चक्र निरूपण ग्रन्थ पर श्री राघव भट्ट की टीका का हवाला देते हुए बताया है कि नाद में सत्, रज और तम, प्रकृति के ये तीनों गुण विद्यमान होते हैं । इनमें से कभी किसी एक की और कभी किसी दूसरे की प्रधानता होती है । जब तमोगुण विद्यमान होता है तो नाद अव्यक्त रहता है (ध्वन्यात्मकोऽव्यक्त नादः) इस अव्यक्तावस्था में इसे निबोधिका या बोधिनी कहते हैं । जब रजोगुण प्रधान होता है, तब इसे नाद कहते हैं । इस अवस्था में किंचित् वर्णवोधन्यासात्मक ध्वनि होती है । जब सत्वगुण का प्राधान्य होता है, तब नाद बिन्दु रूप हो जाता है ।"[17] सम्पूर्ण वक्तव्यों का निष्कर्ष निकालने पर यही प्रतीत होता है कि संत कबीर नाद और बिन्दु को परम चैतन्य की स्थूल अभिव्यक्ति मानते हैं और इनसे होने वाली रचना को भी नश्वर या नाशवान ही समझते हैं । संसार सृष्टि के संबंध में कहीं संत कबीर पर सांख्य, कहीं शषाक्त, कहीं तंत्र और कहीं प्रणवतत्व का प्रभाव आलोचकों ने लक्षित किया है लेकिन इन दर्शनों का प्रभाव ही संत कबीर ने ग्रहण किया है, अनुकरण नहीं किया है, यह कबीर के स्वतंत्रचेता व्यक्तित्व के अनुकूल ही है ।

संसार पर संत कबीर का विचार उपरले तौर पर देखने पर निषेधात्मक प्रतीत होता है, लेकिन गहराई से विचार करने पर उनके निषेध का सच समझ में आता है क्योंकि संत कबीर का निषेध ही उनके सामाजिक चेतना और जागरुकता का प्रमाण है । संसार की असारता दिखाकर संत कबीर ने लोगों से इस संसार के प्रति मोह के त्यागने की बात बार–बार कही है । जगत के मिथ्यात्व या असारता पर कबीरदास जी ने बहुत बल दिया है । इसकी उपमा उन्होंने सेमर के फूल, 'धुँआ के धरौहर' से दी हैं । कभी इसे 'कुहरा का धुन्ध' और 'कभी कागज की पुड़िया' कहा है । संत कबीर कभी इसे स्वप्नवत् कहते हैं और कभी एक हाट कहा है जहाँ सब लोग वाणिज्य करने आये हैं ।"[18] प्रत्येक स्थिति में संत कबीर संसार की नश्वरता, निस्सारता और दुःखमयता दिखाते हैं । वस्तुतः संत कबीर की जीवन दृष्टि निवृत्तिमूलक है, लेकिन यह निवृत्तिमूलकता केवल सामान्यजन और पण्डितों को सचेत करने के लिए ही है और इसके माध्यम से संत कबीर एकमात्र परमतत्त्व ब्रह्म की सत्यता प्रमाणित करना चाहते हैं ।

भारतीय दर्शन में चार पुरुषार्थों में मोक्ष को सबसे अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण पुरुषार्थ स्वीकार किया गया है । भारतीय दर्शन में इसे जीवन का चरम स्वीकार किया गया है । मोक्ष का अर्थ है जीवन मरण के चक्र से छुटकारा । आसक्ति और कर्म से निवृत्ति । कर्म में प्रवृत्ति न होने से उसका फल भोगने का प्रश्न ही नहीं उठता है । अतः जन्म–मरण का क्रम समाप्त हो जाता है और परम तत्त्व से मिलकर एकाकार हो जाता है । संत कबीर और अन्य संतों ने संसार को भवसागर माना है और इससे मुक्त होने को तरना (पार हो जाना) कहा है । सामान्य धारणा यह है कि संसार से छुटकारा पाकर जीव वैकुण्ठलोक में पहुँच जाता है । संत कबीरदास किसी वैकुण्ठलोक में विश्वास नहीं करते । वह कहते हैं कि हे भगवान! हमको तार कर कहाँ ले जाओगे? वह वैकुण्ठ कहाँ और कैसा है ? मुक्ति का प्रश्न तो तब उठता है जब आपने हमको अपने से दूर कर दिया हो । तारने और तरने का प्रश्न तभी

तक है जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता । संत कबीर ने सभी मे एक राम की सत्ता लक्षित कर ली है । अब उसे पूर्ण मानसिक शान्ति प्राप्त है ।"[19] स्पष्ट है कि संत कबीर की दृष्टि में राम से एक भेंट होना ही मुक्ति है । इसके लिए ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं नित्यता का ज्ञान आवश्यक है । शरीर रहते हुए जो माया के सारे बन्धनों को काट लेता है, भेदभाव से ऊपर उठ जाता है, विषयासक्त नहीं होता, उसे जीवन्मुक्त कहा जा सकता है । संत कबीर के अनुसार जगत् की समस्त आशाओं को त्याग देना ही जीवन्मृतक (जीवन्मुक्त) होना है । एक अन्य जगह पर संत कबीर ने कहा कि मेरा मन सांसारिक विषयों से विमुख होकर अपनी सनातन स्थिति (शुद्ध, निर्विकार, निर्द्वन्द्व स्थिति) में पहुँच गया है और अब मैं जीवन्मृतक (जीवन्मुक्त) स्थिति का अनुभव कर रहा हूँ । मोक्ष सम्बंधी संत कबीर के वक्तव्यों को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके विचार भारतीय दर्शन में स्वीकृत धारणाओं के अनुकूल ही है ।

निष्कर्ष

सम्पूर्णतः संत कबीरदास जी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन कर हम पाते हैं कि कबीरदास जी के दार्शनिक विचार मात्र पलायन या बौद्धिक प्रयास नहीं है बल्कि उनकी सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं । कबीरदास जी के दार्शनिक विचार मात्र सिद्धान्त नहीं बल्कि व्यवहार को ढालने का उपक्रम है क्योंकि उन्होंने सिद्धान्त और व्यवहार को एक करके दिखाया है । कबीरदास जी के दार्शनिक विचार बुद्धिप्रसूत न होकर अनुभूति और सत्संगति की आंच में पके हुए हैं और यही कारण है कि उन्होंने अपने पूर्व और समय में प्रचलित किसी भी मतों और सिद्धांतों का अनुकरण नहीं किया है बल्कि उसका युगानुरूप संशोधन कर उसे तेज धार दी है जिससे वह समाज के जड़तापूर्ण अनर्गल प्रलापों की जड़ काट सके । संत कबीर के दार्शनिक विचारों का गन्तव्य या लक्ष्य समाज–सुधार या समाज परिवर्तन ही है, इस दृष्टि से वह साधन है साध्य नहीं । साध्य तो मात्र समाज–परिवर्तन ही है । हिन्दू पुराण और धार्मिक साहित्य में जैसे कृष्ण का व्यक्तित्व और उनका दर्शन है उसी प्रकार संत कबीर का । जैसे कृष्ण का दर्शन बुराइयों के समानान्तर श्रेष्ठ व्यवस्था स्थापित करना था, उसी प्रकार कबीर का भी । इस बिन्दु पर दोनों महानायक एक हैं, और उनके दार्शनिक विचार अनुकरणीय भी ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र– 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', संस्करण 1981, पृ 49.
2. वेस्टकॉट– 'कबीर एण्ड कबीर पंथ', पृ 23.
3. रामकुमार– 'कबीर का रहस्यवाद', संस्करण–1972 , पृ 19.
4. शाह, अहमद (रेवरेण्ड)– 'द बीजक ऑफ कबीर', संस्करण– 1917, पृ 35.
5. चतुर्वेदी, परशुराम– 'कबीर साहित्य की परख', 2011, पृ 89.
6. दास, श्याम सुन्दर– 'कबीर ग्रन्थावली', संस्करण– 1928, पद 49, पृ 174.
7. वही, पद 18, पृ 279.
8. वही, पद 16, पृ 277.
9. वही, पद 58, पृ 180.
10. उपाध्याय, बलदेव– 'भारतीय दर्शन', पृ 457.
11. वही, साखी, पद 24, पृ 42.
12. दास, श्याम सुन्दर– 'कबीर ग्रन्थावली', पद 45, पृ 84.
13. वही, साखी 10, पृ 54.

14. बड़थ्वाल, पीताम्बर दत्त– 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय', पृ 131.
15. गुप्त, माता प्रसाद– 'कबीर ग्रन्थावली', पद 32, पृ 164.
16. द्विवेदी, हजारी प्रसाद– 'कबीर', पृ 46.
17. वुडरोफ, जॉन– 'इन्ट्रोडक्शन टू तन्त्र शास्त्र', पृ. 8.
18. दास, श्याम सुन्दर– 'कबीर ग्रन्थावली' राग आसावरी, पद 33, पृ 285.
19. तिवारी, पारसनाथ– 'कबीर ग्रन्थावली', पद 54, पृ 31.